Educational Administration: Theory and Practice
2023, 29(2), 730 - 738
ISSN: 2148-2403
https://kuey.net/ **Research Article**

हिंदी के दलित लेखकों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

प्रिया यादव[1*], डॉ. मनोज कुमार सिंह[2]

[1*]शोध छात्रा, हिंदी विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ
[2]सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ इन्फॉर्मेशन टेक्नोलॉजी, लखनऊ

Citation: प्रिया यादव et al. (2023), हिंदी के दलित लेखकों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, Educational Administration: Theory and Practice, 29(2) *730 - 738*
Doi: 10.53555/kuey.v29i2.8930

ARTICLE INFO

ABSTRACT

21वीं सदी के दौर में भी गाँव-देहात और नगरों महानगरों में दलितों की झुग्गी-झोपड़ियों में बेहद निरक्षरता, निर्धनता, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, जानलेवा बीमारियाँ, व्यसनाधीनता, अमानवीय रूढ़ि-परंपरा, निर्मम और क्रूर अंधविश्वास की दासता मौजूद है। बेरोजगारी में दिन-रात व वक्त-बेवक्त बेगारी और पुश्तैनी मजदूरी करना तो दलितों की मजबूरी और कमजोरी रही है, इसे नकारने पर गाली-गलौज और बेइज्जती को सहना पड़ता है। अगर इस अन्याय के खिलाफ दलित विद्रोह करे तो इस विद्रोह को कुचलने का सवर्णों के लिए दलितों का सामाजिक बहिष्कार प्रभावी हथियार रहा है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी दलित समाज की दुर्दशा क्यों बनी हुई है? क्या वर्तमान समय में समाज सुधारकों एवं दलित आंदोलनकर्मियों द्वारा दलित उत्थान और उद्धार के उद्देश्य से जो भी प्रयास किए जा रहे है, उस से दलितों की स्थिति में कोई परिवर्तन आया है? क्या स्वयं दलित अपनी व्यथा-वेदनाओं से मुक्त होने के लिए कोई भूमिका निभा रहे हैं? जब तक दुनिया में दलितों के शोषण, उत्पीड़न की समस्या व्यापक रूप में मौजूद है, तब तक इस शोषण, उत्पीड़न के तंत्र पर विचार-विमर्श होना चाहिए और इस के समाधान के बुनियादी कारणों को भी तलाशना चाहिए। हिंदी के दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के विषय में उपरोक्त तथ्यों को अभिव्यक्त किया है। इस शोध विषय में शोधकर्ता “हिंदी के दलित लेखकों की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन” किया है।

परिचय

समाज में वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा की प्रकृति और प्रवृत्ति में अस्पृश्यता, गुलामी, हिंसा, घृणा, द्वेष, धूर्तता, विषमता और अशांति जैसे जहरीले विचारों व व्यवहारों की पराकाष्ठा मौजूद रही है। समाज में पल-बढ़ रही अमानवीयता और असंवेदनशीलता ब्राह्मणवादी सिद्धांत की देन है। यह अद्‌भूत तथा विलक्षण वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा ब्राह्मणों की दृष्टि में उनके दिमाग की सर्वश्रेष्ठ उपज कही जाती है। ब्राह्मणों ने इस निराधार उपज को दैवीय व पवित्र घोषित किया है। ब्राह्मणों की इस दैवीय व पवित्रा खोज ने मनुष्य- मनुष्य के बीच घृणा, द्वेष, नफरतो तथा स्वार्थ की दीवारें खड़ी की हैं। घृणा, द्वेष, नफरतो तथा स्वार्थ की इन दीवारों को पहला झटका गौतम बुद्ध ने दिया था। गौतम बुद्ध के विद्रोही परंपरा से डॉ. आंबेडकर का नाम जुड़ा हुआ है।

वर्ण-व्यवस्था मनुष्य की विवेक बुद्धि तथा तर्क-विज्ञान के आधार पर सोच-विचार करने की, जीवन जीने के अधिकार बिल्कुल नहीं देती है, बल्कि धर्म और ईश्वर के अस्तित्व को आस्था और विश्वास से जीवन में सर्वोपरि स्वीकारने के लिए मजबूर कर देती है। इस बात को समझने के लिए डॉ. आंबेडकर के लेखन से अनेक प्रमाण भी उपल्बध हुए हैं। क्या दलित इस देश के नागरिक नहीं है? अगर दलित इस देश के नागरिक नहीं हैं तो वे क्यों नहीं? अगर दलित इस देश के नागरिक हैं तो उनके साथ भेदभाव क्यों बरता जाता हैं? शोध से यह बात साफ हुई है कि वर्ण-व्यवस्था व जातिप्रथा के कारण मनुष्य की पहचान अथवा योग्यता उसकी कार्यकुशलता से तय नहीं होती है, बल्कि उसका जन्म जिस जाति में हुआ है उस जाति की समाज में मनुस्मृति ने जो हैसियत तय की हुई है उसी के आधार पर निर्भर रही हैं। जातिप्रथा की सब से बड़ी विशेषता है मनुष्य मनुष्य के बीच अलगाव की स्थिति पैदा करना।

डॉ. आंबेडकर के शब्दों में अलगाव का अर्थ है, सामाजिक बहिष्कार, सामाजिक अनादार, सामाजिक भेदभाव और सामाजिक अन्याय अलगाव का अर्थ है, सुरक्षा का अभाव, न्याय का अभाव, अवसर का अभाव। अलगाव का अर्थ है, सहानुभूति का अभाव, भाईचारे का अभाव, सहृदयता का अभाव। इतना ही नहीं अलगाव का अर्थ है, हिंदुओं की प्रत्यक्ष घृणा और उनका विरोध।" तमाम अभावों से प्रभावित जीवन जीने के लिए दलित अभिशप्त हैं। दलित कौन हैं? और जो दलित हैं वे क्यों है? इस सवाल का सीधा-सा जवाब है, दलित भारत की कुल आबादी के अस्सी प्रतिशत मेहनतकश मनुष्यों का समुदाय है। वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मणों ने छल-कपट और धूर्तता से इन मेहनतकश मनुष्यों को सदियों से शिक्षा और संपत्ति से दूर रखकर शूद्रों और अतिशूद्रों का दर्जा देकर मानवीय अधिकारों से वंचित किया है।

Copyright © 2023 by Author/s and Licensed by Kuey. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution License which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.

शरणकुमार लिंबाले के शब्दों में “दलित आंदोलन एक महायुद्ध है, तो दलित साहित्य एक महाकाव्य है।” दलित साहित्य सदियों से अस्पृश्य, शोषित, उपेक्षित, वंचित मनुष्यों की यातना, संघर्ष और उनके स्वप्न के अनुभवों की आत्मस्वीकृतियाँ है। लेकिन यह केवल उनकी अपनी व्यथा-वेदनाओं तक सीमित नहीं रही है, बल्कि यह विरोध, नकार, प्रतिरोध और विद्रोह के स्वर बड़े विस्फोटक प्रवाह और परंपरा में तब्दील होते हुए दिखाई देते हैं। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक, बीसवीं सदी के अंतिम दशक से लेकर इक्कीसवीं सदी की शुरूआत के दौर तक मंडल - कमंडल और मंदिर-मस्जिद के सवालों पर दिनों-दिन बढ़ते सांप्रदायिक दंगे और कश्मीर में हो रही आतंकवाद की घटनाओं को मुद्दा बनाकर सत्ता हथियाने के नए तरीके शुरू हुए। नयी शिक्षा नीति और बाजारवाद की शुरूआत का भी यही समय था। इस से समाज व्यवस्था में सदियों से गुलामी, बेगार, बेरोगारी, छुआछूत और ऊँच-नीच के माहौल में जीने-मरने के लिए अभिशप्त रहे दलितों की जिंदगी कैसे प्रभावित हुई है, इसे समकालीन हिंदी और मराठी के दलित कहानीकारों ने अभिव्यक्ति किया है। आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण का दौर वर्ण व्यवस्था का नया संस्करण है। वर्ण-व्यवस्था और जातिप्रथा के इस नये संस्करण में दलितों का अस्तित्व और उनकी अस्मिताओं के सवाल बेहद जटिल बनते दिखाई दे रहे हैं। लेकिन अधिकांश दलित साहित्यकार इस आधुनिकीकरण और वैश्वीकरण का समर्थन करते दिख रहे हैं। हिंदी की दलित कहानियों में इन सवालों को विचार-विमर्श का विषय बनाया गया है।

दलित साहित्य की पृष्ठभूमि

हिन्दी में दलित साहित्य को जानने के लिए सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि 'दलित शब्द से क्या अभिप्राय है?'दलित कौन है और 'दलित साहित्य क्या है? ये सभी बातें स्पष्ट हो जाने पर ही हम दलित साहित्य और उसकी प्रासंगिता तथा उसकी आवश्यकता को आसानी से समझ सकेंगे। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने इस अध्याय के माध्यम से इसका हल ढूंढने की अथक प्रयास किया है।
'दलित साहित्य एक आन्दोलन के रूप में 1960 के आस-पास मराठी भाषा में आरम्भ हुआ और 1970 तक मराठी भाषा के साहित्य में उसने केन्द्रीय महत्व प्राप्त कर लिया था। यह केन्द्रीय महत्व आज भी मराठी में दलित साहित्य को प्राप्त है। मराठी के दलित साहित्यिक आन्दोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित तो किया, लेकिन लगभग दो दशकों बाद अन्य भारतीय भाषाओं जैसे कन्नड़, गुजराती, हिन्दी आदि में दलित साहित्य की गूंज 1980 के बाद ही सुनाई देनी शुरू हुई जो अब अन्य भाषाओं- पंजाबी, तेलगू, तमिल आदि में भी फैल चुकी है।

दलित साहित्य

दलित साहित्य के साथ दलित शब्द के जुड़ते ही उसकी व्यापकता और आधिक क्रान्ति बोधक हो जाती है। अर्थ और अधिक व्यंजनात्मक होकर साहित्य की भूमिका और सामाजिक उत्तरदायित्वों को अधिक विश्लेषित करने की क्षमता हासिल कर लेता है। दलित शब्द विरोध की अभिव्यक्ति का प्रतीक बन जाता है। मानवीय संवेदनाओं के सरोकारों से जुड़कर सामाजिक प्रतिबद्धता स्थापित करता है।
दलितों का दुःख, परेशानी, गुलामी, अद्यःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। "आह का उदात्त स्वरूप अर्थात दलित साहित्य"[1]
हर एक मनुष्य को स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और भयमुक्त सुरक्षा मिलनी चाहिए इसी पृष्ठभूमि पर निर्मित एक प्रवृत्ति साहित्य मे अभिव्यक्त हो रही है। इस प्रवृत्ति का नाम दलित साहित्य है। दलित साहित्य मनुष्य को केन्द्र मानता है। मनुष्य सुख-दुख से समरस होता है। मनुष्य को महान मानता है। मनुष्य को सम्यक क्रांति की ओर ले जाता है। [2]
अनेक विद्वानों ने 'दलित साहित्य की व्याख्या करते हुए उसे परिभाषित किया है। दलित चिन्तक कंवल भारती की धारणा है कि दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है अपने जीवन -संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटी में आता है।" [3]

दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मास लिटरेचर (Mass Literature) । सिर्फ इतना ही नहीं, लिटरेचर ऑफ एक्शन (Literature of Action) भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरूद्ध आक्रोश जनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।
डॉ० सी०बी० भारती की मान्यता है कि नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परम्पराओं का पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सुजन है हम उसे दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।" [4]
दलित साहित्य की जितनी भी परिभाषाएँ हैं, उनका एकमात्र स्वर है सामाजिक परिवर्तन अम्बेडकरवादी विचार ही एकमात्र प्रेरणा है। बाबूराव बागूल के शब्दों में कहें, मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करनेवाला, मनुष्य को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।" [5]

डॉ० म० न० वानखेड़े- "दलित लेखकों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया साहित्य, दलित साहित्य है।[6] स्वतंत्रता के बाद हिन्दी दलित, लेखन ने अपने अस्तित्व को निर्मित किया है, लेकिन हिन्दी दलित-लेखन की विधिवत् शुरूआत आठवें दशक से होती हैं प्रेमचन्द और निराला के बाद भी दलित-लेखन के क्षेत्र में गौर दलित लेखक के नामों की एक लम्बी फेहरिस्त है जिनमें प्रमुख रूप से जगदीश चन्द्र, शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, अमृतलाल नागर, गिरि राजकिशोर एवं नागार्जुन आदि हैं। हिन्दी की दलित आत्मकथाएँ जिससे दलित साहित्य अस्तित्व में आकर तहलका मचा दिया। इन आत्मकथाओं में जाति के नाम पर हजारों सालों के शोषण और वंचितों की

पीड़ा को पहली बार अभिव्यक्ति मिली। दलितों का कथा-साहित्य उनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी प्रकार के शोषण, उत्पीड़न और अन्याय के प्रति नकार तथा उससे गुक्ति का उद्घोष है।
दलित-लेखन की इस प्रवाहमान धारा में गोरखनाथ, कबीर, रैदास को आधुनिक काल में अपना स्थान बनाते हुए दिखाया गया है, यह धारा प्रेमचन्द, अमृतलाल नागर, जगदीश चन्द्र, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मिकि तक आते-आते आत्मकथा आन्दोलन का रूप ले लेती है।
स्वरूप एवं तत्व संहिता दलित आत्मकथा लिखने का उद्देश्य न तो उसमें अहंतुष्टि की भावना है और न ही पाण्डित्य प्रदर्शन यदि उसमें कुछ है भी तो उन दलित लेखकों की पीड़ा, दर्द, घुटन, वर्ण-व्यवस्था के प्रति विद्रोह, छटपटाहट, बेचैनी तथा रूदन है। ये सब अपनी आत्मकथा के माध्यम से सबके सामने उपस्थित करने का मेरा अथक प्रयास है।

दलित

सर्वप्रथम दलित साहित्य में 'दलित' शब्द की व्याख्या निश्चित करनी होगी। दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध ही नहीं बल्कि दलित साहित्य में दलित का मतलब गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मजदूर श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित' शब्द की परिभाषा में आती हैं। दलित शब्द की परिभाषा में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा बल्कि इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा।
इस प्रकार किसी भी जाति या धर्म से सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति अगर सामाजिक और और आर्थिक रूप से शोषित है तो उसे भी दलितों की एक श्रेणी के रूप में रेखांकित किया जाना मौलिक है। हिन्दी नवजागरण के दौरान हिन्दी साहित्य में जिस तरह तमाम कलात्मक आन्दोलन का उद्भव एवं विकास हुआ उस तरह हिन्दी में दलित साहित्य का कोई आन्दोलन नहीं हुआ, जिससे हिन्दी दलित साहित्य का कोई स्वरूप निर्मित व विकसित हो पाता, लेकिन स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में गैरदलितों द्वारा सृजित साहित्य में दलित चेतना का जो स्वरूप कमोवेश निर्मित होता दिखायी देता है। उसका विकास स्वतंत्रता पश्चात् हिन्दी दलित- लेखन में देखा जा सकता है।
आगे 'दलित' शब्द का क्या अर्थ है? उसको अनेक विद्वानों ने अपने-अपने अनुसार परिभाषित करने का प्रयास किया है।
'दलित' शब्द का अर्थ है जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त हिम्मत हतोत्साहित, वंचित आदि ।
'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के दल' धातु से हुई है जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना है- "भत्ते भंकुभ दले न भुपि सविशुराः ।"[7]
संस्कृत शब्द कोश में भी दलित के अर्थ मिलते है। जैसे-
दलित-(सं० वि०) दल + त + टूटा हुआ, कटा हुआ, पिसा हुआ, चिरा हुआ, खुला हुआ, फैला हुआ ।" [8]
दल- चूर-चूर करना, फाड़ देना।
दलित- दला गया, मर्दित, पीसा गया। [9]
दल- प्राकृत शब्द कोश में दलित का क्रियात्मक अर्थ ही मिलता है- (अक) विकसना, फटना, खण्डित होना, दिघा होना।
दल- (सक) चूर्ण करना, टुकड़े करना ।
दल - (नपुं०) सैन्य, लश्कर, पत्र पत्ती । [10]
दल-(दलित, दलित) दलित टू वर्स्ट, ओपन स्प्लिर क्लेव क्रंक ।
दलित- हृदयं गोठों द्वेगं द्विधा तुन विद्यते वेदनाओं के कारण हृदय के टुकड़े होते हैं नाश नहीं।
दलित- पी०जी० ब्रोकन, टार्च, बर्स्ट रेण्ट, स्थिलर ।[11]
हिन्दी शब्दकोशों में ये अर्थ मिलते हैं-
दलित- 1- कुचला हुआ, मर्दित, मसला हुआ, रौंदा हुआ।
2- पस्त हिम्मत, हतोत्साह ।
3- अछूत, जनजाति, डिप्रेस्ड क्लास ।[12]

हिन्दी संस्कृत शब्दकोश में दलित का अर्थ इस तरह दिया है-
दलित - वि० (संस्कृत)
1- खण्डित, चूणित, मर्कट
2- अस्पृश्य, अन्त्यज
3- नसित ध्वांसित
4- संस्कृत पुलिंग [13]
दलित संस्कृत- दल + क्त
जिसका दलन हुआ हो, जो कुचला, रौंदा, मसला गया हो, जो दबाया गया हो अथवा उसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो। [14]
दलित- (दल + क्त)
1- टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ।
2- 2- खुला हुआ, फैलाया हुआ।"[15]
उच्चतर हिन्दी कोश में दलित शब्द का अर्थ 'डाउन ट्रोडन' दिया गया है।

दलित- हरिजन अस्पृश्य जातियाँ [16]
मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश में दलित शब्द का अर्थ इस प्रकार मिलता है-
दलित- डिप्रेस्ड, दबाना, नीचा करना, झुकना, विनत करना, नीचे लाना, स्वर नीचे करना, धीमा करना, म्लान करना, दिल तोड़ना ।
दलित वर्ग -नीची जातियों के लोग अछूत, हरिजन, पीड़ित दबाए हुए पद दलित, कुचले सताये हुए लोग।[17]
मानक हिन्दी - अंग्रेजी कोश- राममूर्ति सिंह में दलित शब्द के लिए डिप्रेस्ड शब्द दिया गया है और दलित वर्ग के लिए डिप्रेस्ड क्लास आक्सफोर्ड डिक्शनरी में दलित का अर्थ डिप्रेस्ड प्रायः नीची जातियों के अछूत वर्ग से किया गया है।"[18]
श्रीमती ऐनी बेसेन्ट मानती थीं कि अछूत समस्या का कोई धार्मिक आधार नहीं है। इनके प्रति किया जाने वाला व्यवहार सामाजिक है। इनकी वास्तविक समस्या सफाई, स्वास्थ्य एवं शिक्षा है। इससे निजात दिलाकर अनको अपने अधिकारों के प्रति सजग किया जा सकता है। इस प्रकार अछूतों की समस्या की जड़ गरीबी, गंदगी और अशिक्षा है न कि धर्म, इसी कारण ये दोयम दर्जे के नागरिक के रूप में समाज में रहते हैं। श्रीमती बेसेन्ट के साथ विवेकानंद और रानाडे ने भी इस शब्द का इसी संदर्भ में कई बार प्रयोग किया है।

दलित साहित्य की प्रासंगिकता

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण होता है उसी प्रकार दलित साहित्य, दलित समाज का दर्पण है। यदि इस दर्पण में देखा जाया तो समाज की सच्ची तस्वीर दिखाई देगी। किसी भी रचना के मूल्यांकन के लिए उसका प्रयोजन क्या है? उसका अभिप्राय क्या है ? जानना अति आवश्यक है। इस विश्लेषण के बगैर किसी भी रचना का मूल्यांकन अधूरा ही कहा जाएगा।
दलित साहित्य समाज सापेक्ष है साहित्य की मूल संवेदना के साथ-साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व की भावना को सर्वोपरि मानता है । मोहनदास नैमिशराय के अनुसार, 'शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बन्धुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।" [19]
सार्त्र के शब्दों में कहें तो लेखन केवल लिखना ही नहीं, एक कार्यवाही है, और बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत संघर्ष में लेखन को सायास एक अधिकार की तरह इस्तेमाल करना चाहिए। दलित रचनाकारों ने साहित्य को अपने मुक्ति आन्दोलन का एक हिस्सा बनाया है। शब्द की आग से ऊर्जा ग्रहण कर उन्होंने अपने आन्दोलन को गम्भीर सरोकारो से जोड़ा है। मराठी के विख्यात दलित लेखक बाबूराव बागूल की यह मान्यता बल देती है। कि दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानव है, और वह मानव के ही इर्द-गिर्द घूमता है। साहित्य की भूमिका को रेखांकित करते हुए जनवादी लेखिका रमणिका गुप्ता की मान्यता है कि 'दुनिया का नब्बे प्रतिशत साहित्य आजादी की चाह के लिए ही लिखा जाता रहा है। दलित साहित्य आजादी के साथ-साथ समता, बन्धुत्व की चाह को भी समान स्तर पर रखकर साहित्य रचता है।" [20]

जब हम हिन्दी साहित्य का विश्लेषण करते हैं तो कुछ विशिष्ट स्थितियाँ पाते हैं, जैसे भक्ति एवं चारण भावनाएँ हिन्दी साहित्य में प्रबल रूप से उभरी हैं जो पलायन और स्थितियों के अनुकूल से उत्पन्न होकर साहित्य की धार बनी है और चमत्कारिक सम्भावनाओं का इन्तजार करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। यही स्थिति आजादी की लड़ाई के दौरान छायावाद की है जो एक प्रकार का पलायन ही है निज वेदना में समाज की पीड़ा दुःख-दर्द गौण हैं। इसके विपरीत दलित साहित्य समाज के दुःख-दर्द से जूझकर मनुष्य की लड़ाई लड़ता है।
डॉ० पानतावणे दलित साहित्य की अन्तःचेतना को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि दलित साहित्य हमारे समाज का दर्पण है, जो हमने देखा है, अनुभव किया, भोगा, जाना, समझा, उसका अंकन उत्कटतापूर्वक हुआ हैं। दलित्व का निर्मूलन हमारे साहित्य का हथियार हैं। इसलिए सर्वव्यापी क्रान्ति का यह आह्वान करता है।"[21]
डॉ० एन० सिंह की व्याख्या दलित साहित्य के उद्देश्यों को बदलाव की प्रक्रिया में आवश्यक मानती है। उनका कहना है: 'इस धारा के रचनाकार गाँव और छोटे कस्बों में रहकर आम आदमी की सारी दिक्कतों को झेलते हुए समय मिलते ही अपनी लहूलुहान चेतना को इस प्रतिबद्धता के साथ अभिव्यक्त करते हैं कि आसपास बिखरा गूँगा, बहरा जनसमूह मेरी आवाज सुनकर जाग जाए ये कवि पसीने में डूबकर पसीने की बात करते हैं। शायद त्रासद स्थितियों में कुछ परिवर्तन आए।"
इसी प्रकार की मान्यता रजतरानी मीनू भी व्यक्त करती है: दलित कविता बदतर जीवन स्थितियों के खिलाफ बेहतर जीवन परिस्थितियों के लिए यथास्थिति से विद्रोह की कविता है। यह विद्रोह मार्क्स की रक्त क्रान्ति जैसा हिंसात्मक केवल राजनीतिक स्तर पर घटित होने वाला विद्रोह नहीं है अपितु बुद्ध, अम्बेडकर की रक्तरहित सम्यक क्रान्ति का प्रेरक मन्त्र है जो सामाजिक सांस्कृतिक स्तरों पर घटित होने वाले सन्तुलित परिवर्तन का आधार है।" [22]

दलित रचनाकार की अपनी परिस्थितियाँ अनुभव- वैशिष्ट्य भले ही निजी हों,फिर भी उनका सामाजिक, ऐविहासिक अर्थ होता है। उनको शब्दबद्ध करना आनेवाली पीढ़ियों के लिए महत्वपूर्ण होता है हतजारों साल से शोषितों, पीड़ितों, दलितों के विचार, उनकी भावनाएँ अपने मालिकों के प्रति क्या थीं? कैसी थीं? उनकी आशा, निराशा, आकांक्षा, भय, जो उन स्थितियों से उत्पन्न होते थे, वे क्या थे? अपने मालिकों के प्रति उत्पीड़न के क्षणों में उनकी धारणाएं क्या थी? यह जानने का कोई रास्ता हमारे पास नहीं है अतीत के गर्भ में सब राख हो गया है। अतीत का आकलन करने का कोई आधार आनेवाली पीढ़ियों के पास नहीं है। साहित्य, जिस पर सामन्ती और ब्राह्मणवादी सोच का प्रभुत्व था, वह हमें सिर्फ उनकी जो धारणाएँ हमारे प्रति थीं, सिर्फ उतना ही बताता है हीनताबोध उत्पन्न करने वाला यह साहित्य हमारे लिए सिर्फ दासता ही ला सकता है स्वतन्त्रता या मुक्ति को चाहना अपराध है।
अर्जुन डांगले के अनुसारः सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरूद्ध आन्दोलन खड़ा करके एक नए समाज का निर्माण करना है, यह दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।" लेकिन साथ ही वे यह भी मानते हैं कि 'समाज परिवर्तन का एक मात्र माध्यम या साधन साहित्य ही नहीं है। अनेक माध्यमों में से वह एक माध्यम होसकता है। प्रत्येक माध्यम की अपनी एक अंगीभूत ताकत होती है जीवन्त साहित्य में जिन मूल्यों का प्रचार होना अपरिहार्य होता है, उस प्रचार को साहित्य में अधिक ताकतवर करना है तो उस माध्यम की अंगीभूत ताकत कैसी

है, इसका विचार यदि नहीं किया गया तो उस माध्यम का परिणामकारक उपयोग नहीं किया जा सकेगा। केवल साहित्य से क्रान्ति होती है यह सिर्फ भ्रम है। क्रान्ति के लिए क्रान्तिकारी तत्वज्ञान, आन्दोलन, क्रान्तिकारी समूह होने चाहिए।" [23]
दलितों पर सदियों से अत्याचार होता आया है। उन्हें भूख की समस्या से लड़ना पड़ा, घृणित से घृणित काम करने के लिए बाध्य किया गया, वर्ण-व्यवस्था का शिकार होना पड़ा तथा समाज के प्रतिष्ठित लोगों की गुलामी करने के बावजूद भी उन्हें अपमान और तिरस्कार के सिवा कुछ नहीं मिला। इन सभी समस्याओं की ओर ध्यान दिलाना तथा उनसे मुक्ति पाना ही दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।
बाबूराव बागूल के शब्दों में कहें तो मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करनेवाला, मनुष्य को महान माननेवाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।"[24] डॉ० राणाप्रताप का मानना है कि दलित लेखन द्विज संस्कृति व उसके वर्चस्व के खिलाफ है। दलित लेखक का संघर्ष निर्वर्ण समतामूलक समाज की स्थापना की मांग करता है। दलित लेखन में वेदना ही पराकाष्ठा है।" [25]

दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक सन्दर्भों के साथ जुड़कर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बनता है। रमणिका गुप्त का कहना है कि 'दलित साहित्य उस दबी हुई अस्मिता को प्राणवान मानव अस्मिता का हिस्सा बनाने की लड़ाई लड़ रहा होता है, जब वह वर्णविहीन, वर्गविहीन जातिविहीन समाज बनाकर एक मानवीय समाज बनाने की घोषणा करता है जनवादी, प्रगतिशील और जनतांत्रिक साहित्य जो भारत के जन्मना जाति के सन्दर्भ में केवल वर्ग की ही बात करते-करते एकतरफा कहें कि इकहरा हो गया था दलित साहित्य ने सामाजिक समानता और राजनीतिक भागीदारी को भी साहित्य का विषय बनाकर उनकी आर्थिक समानता की अधूरी मुहिम को पूर्णता दी। इन तीनों मुद्दों पर समानता प्राप्त किए बगैर मनुष्य पूर्ण समानता प्राप्त नहीं कर सकता। दलित साहित्य इस पूर्ण समानता के लिए संघर्षरत है।" [26]

दलित साहित्यकार अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के साथ रचनाकर्म से जुड़कर साहित्य की सृजनात्मकता में मानवीय सरोकारों, संवेदनाओं और स्वतन्त्रता, भाई-चारे की भवनाओं को स्थापित करता है उसकी दृष्टि में प्रत्येक व्यक्ति और उसकी पीड़ा, उसके सुख-दुःख महत्वपूर्ण हैं। उसमें दलित हो या स्त्री उसके प्रति रागात्मक तादात्य स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख प्रयोजन है। दलित चिन्तन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारम्परिक और स्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाध्य किया है। झूठी और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है। अपने पूर्व साहित्यकारों के प्रति आस्थावान रहकर नहीं बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि रखकर दलित साहित्यकारों ने पुनर्मूल्यांकन की जद्दोजहद शुरू की है, जिससे जड़ता टूटी है। साहित्य आधुनिकता और समकालीनता की ओर अग्रसर हुआ है।
वर्ण-व्यवस्था के अमानवीय बन्धनों ने शताब्दियों से दलितों के भीतर हीनता भाव को पुख्ता किया है। धर्म और संस्कृति की आड़ में साहित्य ने भी इस भावना की नींव सुदृढ़ की है। ऐसे सौन्दर्यशास्त्र का निर्माण किया गया जो अपनी सोच और स्थापनाओं में दलित विरोधी हैं जो समाज के अनिवार्य अन्तर्सम्बन्धों को खंडित करने में सहायक रहा है।
ऐसे प्रतिकूल, नैराश्यपूर्ण क्षणों में भी दलित कवियों ने हीन भावना का त्याग करके सजगता और सतर्कता से विसंगतियों और विषमताओं के बीच दलित साहित्य को जीवन सरोकारों से जोड़ा। दलित कवि साहित्य के मूलभूत प्रयोजनों से साक्षात्कार करता है यह दलित कवि की सहज और अनिवार्य प्रतिबद्धता है, जो उसकी रचनात्मक ऊर्जा है। डॉ० अम्बेडकर ने दलितों में चेतना जगाकर उन्हें मुक्ति संघर्ष से जोड़ा। वर्ण-व्यवस्था ने जो उन पर गुलामी के बंधन करने थे उन्हें तोड़ने में डॉ० अम्बेडकर का आन्दोलन जहाँ एक ओर सामाजिक और वैचारिक आन्दोलन था वहीं वह राजनीतिक आन्दोलन भी था। दलित साहित्य उसी संघर्षशील चेतना की अभिव्यक्ति है। दलित सदियों की दासता और शोषण, दमन, उत्पीड़न के कारण हीन भावना से ग्रसित थे। इसी हीन भावना को तोड़कर एक मनुष्य के रूप में उसकी पहचान और स्वाभिमान को स्थापित करना दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है तथा यही उसकी प्रासंगिकता है।
दलित साहित्य में जहाँ 'अधिकार युद्ध' की अनुगूँज है, वहीं समता और समरसता की प्रतिध्वनि भी है। पूज्य गुरूदेव नानक, इंसानियत और भाई चारे के वशीभूत हो सदैव यही पैगाम देते रहे हैं-
नानक दुखिया सब संसार,
जित्थे ये नीच संभालिय
उत्थे नदीर तेरी बक्शिश।
अर्थात् जहाँ दलितों को सम्भाला जाता है, उनको उठाने का भाव है वहीं तेरी (ईश्वर) मेहर है।

मध्यकाल के सन्त कवियों कबीर, रविदास सबकी आधुनिक काल में यही प्रासंगिकता है कि इस जाति-पाति व भेदभाव के कोढ़ से भारतीय समाज के शरीर को मुक्त करके जाति-पाति व भेदभावविहीन समाज बनाकर ही इसे निरोग बनाया जा सकता है और तभी हमारा देश व समाज यूरोप, चीन, जापान की तरह भौतिक प्रगति के रास्ते पर अर्गसर हो सकता है। भौतिक साधनों से जीवन में सुख-समृद्धि लाकर ही आध्यात्मिकता की बातों हो सकती हैं।

दलित लेखन स्वरूप

दलित लेखन के प्रारंभिक स्वरूप पर अवलोकन करें तो हमें विभिन्न कालो, विभिन्न रूपों और विभिन्न धाराओं में दलित लेखन देखने को मिलता है । उमाशंकर चौधरी के अनुसार “भारतीय इतिहास में दलित विमर्श के दो रूप पाए जा सकते हैं- एक दलित विषयक चेतना और दूसरा दलितों में चेतना, जबकि खुद दलितों के द्वारा ही अपनी समस्या पर पैनी निगाह डालना दलितों में चेतना का आना है। अछूतों और दलितों की समस्या पर इतिहास में एकदम आरंभ से लिखा जा रहा है। दूसरे शब्दों में, इस वर्ण व्यवस्था के उद्भव के साथ ही इसका विरोध भी विभिन्न रूपों में सामने आता रहा है।" [27]

अर्थात आदि काल से ही अस्पृश्यों यानी आज के दलितों ने मनुष्य के बीच जन्म के आधार पर भेदभाव करने वाली व्यवस्था का हर स्तर पर अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार विरोध करते आए हैं। बजरंग बिहारी तिवारी के अनुसार - "प्राचीन संप्रदायों में से एक लोकायत या चार्वाक मत ने संभवतः सबसे पहले वैदिक व्यवस्था को प्रश्नों के घेरे में लाने की कोशिश की। यह दीगर बात है कि लोकायत संप्रदाय बहुत व्यापक व बुद्धिजीवी नहीं हो पाया। लेकिन उसके बाद दूसरे मतों का उदय हुआ। उन्होंने प्रतिरोध की इस परंपरा को बनाए रखा। इन मतों में बौद्ध मत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है"[28] लेकिन आजीवकों के यहां विरोध बिल्कुल भिन्न रूप में दिखाई पड़ा ।
चार्वाक का मूल दर्शन इहलोक पर आधारित है। वह इहलोक से परे किसी पारलौकिक दुनिया का खंडन करते हैं। वे वेद आधारित दर्शन का खंडन करते हुए ईश्वर की परिकल्पना को अस्वीकार करते हैं। चार्वाक दर्शन कहता है - "कल किसने देखा है, खाओ पियो मौज करो, जो कुछ है यहीं है इस दुनिया से परे कोई दूसरी दुनिया नहीं है।" [29]

चार्वाक या लोकायत का मूल्य ध्येय वर्ण व्यवस्था का विरोध नहीं था बल्कि इन सबसे अलग होकर पूरी तरह जीवन का आस्वाद लेना था । शायद इसी कारण यह दीर्घजीवी नहीं हो सका। बावजूद इसके यदि समाज के निचले तबकों के आंदोलनों का आदिकाल से इतिहास देखा जाए तो चार्वाक को नकारना भी संभव नहीं होगा। यद्यपि चार्वाक पर कई तरह के आरोप लगाए जाते हैं इसके बावजूद चार्वाक वह पहला शख्स था जिसने लोगों को भगवान के भय मुक्त होना सिखाया। भारतीय दर्शन में चार्वाक ने ही बिना धर्म और ईश्वर के सुख की कल्पना की। इस आधार पर देखें तो चार्वाक भी दलितों की आवाज उठाता नजर आता है भले ही चार्वाक दर्शन दीर्घजीवी नहीं हो सका। रामधारी सिंह दिनकर का चार्वाक दर्शन के संबंध में या मत है कि- “श्रमण अधिकतर आस्तिक होते थे, फिर भी, उनके भीतर मुक्त चिंत का काफी जोर था । उनके अलावा लोकायतों की परंपरा में कुछ ऐसे भी व्यक्ति और संप्रदाय थे, जो कहते थे कि सब कुछ मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाता है, आगे कोई स्वर्ग या नरक नहीं है, जिसकी मनुष्य को चिंता होनी चाहिए।" [30]
वर्ण व्यवस्था के खिलाफ सामूहिक रूप से प्रतिरोध का प्रथम महात्मा बुद्ध से शुरू होता है। ईसा पूर्व 600 ईस्वी में ही बौद्ध धर्म ने हिंदू समाज के अस्पृश्य लोगों के लिए, उनके अधिकारों के लिए आवाज उठाई। गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म के जरिए एक क्रांति लाने की पहल की। बुद्ध ने स्पष्ट कहा था-
"न जच्चा होती ब्राह्मणों, न जच्चा होती वस्सलों ।
कम्मना होती ब्राह्ममणों, कमन्ना होती वस्सलो ।
अर्थात जन्म से कोई महान नहीं होता, यह कर्म है जो व्यक्ति को महान बनाता है"।, गौतम बुद्ध ने सुनीति नामक भंगी को अपने संघ में सम्मिलित करके सामाजिक दृष्टि से एक क्रांतिकारी परंपरा की शुरुआत की थी । दलित साहित्य का यही आधार है अर्थात वर्ण व्यवस्था का विरोध आज दलित साहित्य का एक प्रमुख स्वर है । गौतम बुद्ध ने सवर्ण जातियों के दिलों में अस्पृश्यों के प्रति संवेदना के बीज बोने के प्रयास किए जिसके फलस्वरूप बुद्ध के बाद संस्कृत के ब्राह्मण विद्वान अश्वघोष ने वज्र सूची की स्थापना की। इस रचना में और समान नीति पर आधारित ब्राह्मणवादी वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा का विरोध किया गया है। डॉ. तुलसीराम का मानना है- “बुद्ध चरित के रचनाकार अश्वघोष पहले संस्कृत के कवि थे, जिन्होंने ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था पर आक्रमण करते हुए 'वज्रसूची' नामक काव्य ग्रंथ लिखा। [31]

यद्यपि अश्वघोष ब्राह्मण बौद्ध थे, फिर भी मैं उनकी पुस्तक वज्रसूची को दलित साहित्य की रचना मानता हूँ।" लेकिन बुद्ध काल के दलित चिंतक भी इतिहास के पन्नों में विलीन हो गए और कोई बहुत बड़ा बदलाव नहीं कर पाए। डॉ. अंबेडकर के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के बाद पुनः बौद्ध धर्म का महत्व दलितों के लिए बढ़ गया। भारत में चार्वाक के बाद बुद्ध पहले ऐसे शख्स थे जिन्होंने ब्राह्मणवाद, जातिवाद और अंधविश्वास के खिलाफ न केवल आवाज उठाई बल्कि एक दर्शन भी दिया जिससे कि समाज के लोग ब्राह्मणवादी दासता के जंजीरों से मुक्त हो सके। समाज में अस्पृश्य लोगों को क्रांति की जो दिशा बुद्ध ने दिखाई वह आज डॉ. अंबेडकर के कारण पुनः प्रासंगिक बन गया है।[32]
आठवीं सदी में सिद्धों और नाथों ने वर्ण व्यवस्था का विरोध किया तथा ब्राह्मणों के कर्मकाडो एव जन्म आधारित श्रेष्ठता को अस्वीकार किया, कुछ सिद्ध ने निम्न वर्ण की स्त्रियों से विवाह किए थे और कुछ सिद्ध ने अपने समय की परिस्थितियों के परिणामस्वरूप अपनी कविताओं में विद्रोह का स्वर भर दिया। सरोरुहपाद (सरहपा) नामक ब्रजयानी सिद्ध जाति व्यवस्था के भयंकर विरोधी थे। वह कहते हैं- “ ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे- जब हुए तब हुए थे। इस समय तो वे भी दूसरे लोग जिस प्रकार पैदा होते हैं वैसे ही पैदा होते हैं, तो ब्रह्म रहा कहां। यदि कहो कि संस्कार से ब्राह्मण होता है तो चांडाल को भी संस्कार दो, वह भी ब्राह्मण हो जाए; यदि कहो कि वेद पढ़ने से कोई ब्राह्मण होता है; तो क्यों नहीं चांडालों को भी वेद पढ़ाकर ब्राह्मण हो जाने देते? सच पूछो तो शूद्र भी तो व्याकरणादि पढ़ते हैं और इन व्याकरणादि में भी तो वेद के शब्द हैं, फिर शूद्रों का भी तो वेद पढ़ना हो गया और यदि आग में घी देने से मुक्ति होती हो तो सबको क्यों नहीं देने देते ताकि सब मुक्त हो जाए? होम करने से मुक्ति होती हो या नहीं; धुआं लगने से आँख को कष्ट जरूर होता है। ब्राह्मण 'ब्रह्मज्ञान ब्रह्मज्ञान' चिल्लाया करते हैं। अव्वल तो उसके अथर्ववेद इस सत्ता ही नहीं है, फिर और तीनों वेद के पाठ भी सिद्ध नहीं, इसलिए वेद का तो कोई प्रमाण ही नहीं है। वेद तो परमार्थ नहीं है, वह तो शून्य की शिक्षा नहीं देता, वह तो एक व्यर्थ की बकवास है।", [33] इसी तरह वे पंडितों को फटकारते हुए कहते हैं- पंडिअ सअल सत्त बक्खाणइ । देहहि रूद्ध बसंत न जाणइ ।
अमणागमण णतेन विखंडिअ । तोवि णि लज्ज भणइ हउँ पंडिआ । [34] नाथ कवियों ने भी वर्ण व्यवस्था का विरोध किया था। मध्यकाल में रामानंद के शिष्य परंपरा में कबीरदास, रैदास, मलूकदास आदि लगभग सभी संत कवियों ने दासता, अस्पृश्यता, शोषण, सार्वजनिक स्थानों पर दलितों के प्रवेश पर रोक, जातिवाद, मूर्ति पूजा, कर्मकांड आदि का विरोध किया । जाति के सवाल पर " कबीर कहते हैं। का करो जाति का करो पाति। राम का भजन करो दिन राती। कबीर ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर सवाल उठाते हैं- 'जौ तू बाभन औ बभनी जाए तो आन बाट कहू न आया" [35]

संत कवियों में कबीर दास ने बहुत ही प्रखर और उग्र स्वर में वर्णाश्रम का विरोध किया। रैदास ने भी इसी तरह सामाजिक भेदभाव के प्रति आवाज उठाई-

"रैदास एक बूंद सो, तभी मचौ विचार
मूर्ख है जो करत है, बरण-अबरण विचारी ।। [36]

भक्तिकालीन अनेक संत कवि निम्न जातियों से थे। वे सभी निर्गुण ब्रह्म में विश्वास करते थे क्योंकि उनके लिए मूर्ति पूजा और मंदिर प्रवेश निषेध था । इन संत कवियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था का जो विरोध किया, वह परंपरागत ढांचे में रह कर ही किया। निर्गुण भक्ति साधना के आधार पर ही वे इन्हें चुनौती देते थे जो मध्यकाल में स्वभाविक था । यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि आदिकाल और मध्यकाल में भी सरहपा और कबीरदास जैसे आधुनिक सोच वाले व्यक्ति हुए जिन्होंने ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था का विरोध कठोर शब्दों में किया ।

ज्योतिबा फुले (1827-1890) ने 1870 के लगभग महाराष्ट्र में वर्णाश्रम और ब्राह्मणवाद विरोधी आंदोलन का बिगुल बजाया। फुले ने अपनी रचनाओं तृतीय रत्न 1855, ब्राह्मणों की चालाकी 1869, गुलामगिरी 1873 के माध्यम से ब्राह्मणशाही जाल में फंसे समाज में चेतना को प्रसारित करने का प्रयास किया। गुलामगिरी की प्रस्तावना में फुले लिखते हैं- "सैकड़ों सालों से आज तक शूद्रादि-आतिशूद्र (अछूत) समाज, जब से इस देश में ब्राह्मणों की सत्ता कायम हुई तब से लगातार जुल्म और शोषण के शिकार है। यह लोग हर तरह की यातनाओं और कठिनाइयों में अपने दिन गुजार रहे हैं। इसलिए इन लोगों को इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए और गंभीरता से सोचना चाहिए। ये लोग अपने आपको ब्राह्मण पंडा- पुरोहितों की जुल्म-ज्यादतियों से कैसे मुक्त कर सकते हैं, यही आज हमारे लिए सबसे महत्वपूर्ण सवाल है। यही इस ग्रंथ का उद्देश्य है"। [37] फुले ने सत्यशोधक समाज नामक एक संगठन भी बनाया जिसका उद्देश्य वचक ब्राह्मणों और अवसरवादी शास्त्रों से निम्न जातियों की रक्षा करना था ।

आगे चलकर नवजागरण काल में विभिन्न समाज सुधारक आंदोलनों यथा ब्रह्म समाज,आर्य समाज,प्रार्थना समाज द्वारा भी दलितों की समस्या के समाधान हेतु महत्वपूर्ण कोशिशें की गई। इस समय जो भी समाज सुधार आंदोलन चले वह मुख्य उच्च एवं मध्य वर्ग तक ही सीमित थे। इसी समय सन् 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' सामने आई । चालीस पंक्तियों की लंबी कविता में हीरा डोम ने दलित समाज की अत्यंत मार्मिक अभिव्यक्ति की है । इस कविता में उन्होंने अपनी वेदना,ब्राह्मणवादी क्रूर व्यवस्था, ठाकुर की मार, हिकारत और धूर्तता का बयान करने के साथ-साथ भगवान की सत्ता को भी चुनौती दी है-

हमनी के राति दिनदुखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे के मिनती सुनाइबी ।
हमनी के दुख भगवाओं न देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइबी.....
हमनी के इनरा के निगिचे न जाइलेवा,
पॉके में से भरिभरि पिअतानि पानी।
पनही से पिटि पिटि हाथ गोड़ तुरि देले,
हमनी के एतनी काही के हलकानी ? "।। [38]

हीरा डोम तथा उनकी कविता अछूत की शिकायत के प्रकाशन के लंबे समय बाद इसे चर्चित करने का श्रेय डॉ रामविलास शर्मा को है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस कविता का परिचय देते हुए लिखा था- " सितंबर 1914 की सरस्वती में पटना के हीरा डो की कविता अछूत की शिकायत प्रकाशित की शिकायत प्रकाशित हुई। यह भोजपुरी में है और संभवतः उस भाषा में लिखी हुई यह एकमात्र कविता है जो द्विवेदी जी की सरस्वती में प्रकाशित हुई थी । यह कविता उनके पास भेजी गई थी क्योंकि कविता के ऊपर कोष्टक में छपा था- 'प्राप्त'। हिंदी में इससे पहले और बाद को भी किसी डोम बंधु की लिखी कविता मेरे देखने में नहीं आई। [39] डॉ.रामविलास शर्मा के अनुसार - "गांव के सर्वहारा समुदाय की वर्ग चेतना यहां पहली बार साफ-साफ प्रतिबिंबित हुई है।... हीरा डोम की उक्त रचना में जो प्रतिरोध का स्वर है, शोषण चक्र के भीतर की तंत्र की जो पहचान है, श्रम करने वालों के महत्व का जो ज्ञान है, करुणा और व्यंग्य के साथ आत्मसम्मान की जो भावना है, वह सब हिंदी कविता में दूसरी जगह व्यक्त नहीं हुआ ।" [40]

हीरा डोम का जन्म 1855 के लगभग पटना जिले के दानापुर में हुआ। इनकी मृत्यु का समय अज्ञात है। यह कविता महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित सर्वशक्ति सितंबर 1914 भाग 15 खंड 2 पृष्ठ संख्या 512-13 में प्रकाशित हुई थी । एक ओर इसे प्रकाशित करने का श्रेय द्विवेदी जी को जाता है वहीं दूसरी ओर रामविलास शर्मा जी को व्यापक हिंदी जगत में इसे चर्चित कराने का श्रेय जाता है। सन् 1977 में प्रकाशित अपनी पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण में डॉक्टर शर्मा ने इस कविता को उद्धृत किया। इसके बाद ही इसकी ओर लोगों का ध्यान गया। [41] मदन कश्यप के अनुसार- "अपने गुस्से का इजहार करने के साथ- साथ हीरा डोम ने धर्म परिवर्तन की चालाकी और निरर्थकता को भी रेखांकित कर दिया है। सामंती समाज में श्रम को सबसे निचले पायदान पर रखा जाता है और जिनके कर्म जितने शर्म विरोधी होते हैं उसे उतना ही श्रेष्ठ समझा जाता है। हीरा डोम की इस कविता में श्रम की प्रतिष्ठा और अपकर्मों की निंदा के माध्यम से सामंती समाज के एक बड़े विपर्याय को उजागर किया है... इसकी दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि यह कविता बिना किसी बौद्धिक विमर्श के सिर्फ अपने सहज अनुभव के आधार पर यह स्थापित करने में सफल होती है कि ईश्वर एक वर्गी अवधारणा है। [42]

हीरा डोम के बाद स्वामी अछूतानंद का नाम उल्लेखनीय है। इनका जन्म 6 मार्च 1876 को उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के सौरभ गांव में हुआ था । जिनका मूल नाम हीरालाल था । यह जाति के चमार थे। स्वामी अछूतानंद मूलतः कवि, नाटककार और पत्रकार थे। इन्होंने 'आदि हिंदू आंदोलन चलाया। इसके लिए उन्होंने 'आदि हिंदू' नामक अखबार निकाला। इनकी कृतियों में अछूत पुकार, पाखंड

खंडन, आदिवंश का डंका, माया नंद बलिदानी और संबुक बलिदान आदि प्रमुख हैं। स्वामी जी की कुछ कविताओं की पंक्तियां दृष्टिगत हैं जो विचारोत्तेजक हैं-

“यदि खून में कुछ जोश हो, ओ बेहोश कौमों जो होश हो,
तो क्यों पड़े खामोश हो, जागो बहुत बर्बाद हो।" [43]

इसके अतिरिक्त आरंभिक दलित साहित्यकारों में लोक कवि बिहारी लाल हरित का नाम आता है। इन्होंने 1946 में 'अछूतों का पैगंबर', 'अछूतों का बेताज बादशाह' लिखी बिहारी लाल को विशेष ख्याति भीमयान' से मिली। यह महाकाव्य रामचरितमानस की तर्ज पर अम्बेडकर की सम्पूर्ण जीवन गाथा है। एक अन्य दलित कवि स्वामी शंकरानंद थे, जिन्होंने अपनी पुस्तक 'संकरानंद भजनावली' में मनुस्मृति की रचनात्मक आलोचना की । इसके अतिरिक्त महात्मा बख्शीदास का 'रविदास रामायण', अयोध्यानाथ ब्रह्मचारी की 'वर्णों का न्याय', मोतिलाल संत की 'संत के छक्के', सोहनलाल शास्त्री की डॉ. अंबेडकर के साथ पच्चीस आदि पुस्तकें आई । [44]

उपसंहार

दलित विचारक दलितों द्वारा रचित साहित्य को ही दलित साहित्य का अंग मानते हैं। एक ओर जहां वह स्वानुभूति को दलित साहित्य का अंग मानते हैं वहीं दूसरी ओर उनके दलित विमर्श की अवधारणा में वे सारे पिछड़े वर्ग जिसमें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति आदि भी शामिल है को दलित के अंतर्गत स्वीकार करते हैं लेकिन जब दलित लेखन की बात आती है तो केवल अनुसूचित जाति द्वारा रचित साहित्य ही हमारे सामने आता है। अनुसूचित जनजातियों की समस्या अनुसूचित जातियों से बिल्कुल भिन्न प्रकार की है। दलित चिंतकों द्वारा व्यक्त दलित विमर्श की अवधारणा में अनुसूचित जाति को भी समेटा गया है लेकिन जब हम दलित साहित्य को देखते हैं तो पाते हैं कि दलित साहित्य आंदोलन में अनुसूचित जनजातियों की उपस्थिति बिल्कुल नगण्य है। आज जितने भी दलित साहित्यकार हैं उनमें से अनुसूचित जनजाति के शायद एक भी नहीं हैं । दलित साहित्य के भीतर न ही कभी जनजातियों की समस्या को उठाया गया है और न ही अनुसूचित जातियो और अनुसूचित जनजातियों की समस्या में कोई समानता है। अनुसूचित जातियों की समस्या मुख्य रूप से अस्पृश्यता की है जबकि अनुसूचित जनजातियों की समस्या क्योंकि वे जंगलों, वनों में निवास करते हैं विकास के आयामों से बिल्कुल कटे होने की है। जनजातियों की समस्या दलित विमर्श से बिल्कुल भिन्न है। वहीं दूसरी ओर गैर दलित विचारक भी दलित साहित्य के संदर्भ में अपने-अपने विचार व्यक्त करते हैं। इसमें डॉक्टर मैनेजर पांडे के कथन को देखा जा सकता है। वे कहते हैं- “जहां तक दलित साहित्य की अवधारणा की बात है, तो दलित साहित्य को दो रूपों में देखा जा सकता है । एक तो दलितों के द्वारा दलितों के बारे में दलितों के लिए लिखा गया साहित्य और दूसरा दलितों के बारे में गैर दलित लेखकों का साहित्या। मेरे विचार में करुणा और सहानुभूति के सहारे गैर दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा साहित्य लिख सकते हैं। लेकिन सच्चा दलित साहित्य वही है, जो दलितों द्वारा अपने बारे में लिखा जाता है क्योंकि ऐसा साहित्य अनुभूति और करुणा से नहीं बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है। ऐसी स्थिति में अगर आ के दलित लेखन पर ध्यान दें, तो ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियां, कंवल भारती की कविताएं तथा मोहनदास नैमिशराय की अपने अपने पिंजरे जैसी गद्य रचनाएं दलित साहित्य की संभावनापूर्ण शुरुआत का संकेत देती है। डॉ. मैनेजर पांडे दलितों एवं गैर दलितों दोनों के द्वारा लिखे गए साहित्य को दलित साहित्य मानते हैं।

यह सही है कि गैर दलितों ने दलितों को लेकर बहुत कम लिखा है और यह भी सही है कि जो भी थोड़े बहुत उन्होंने दलितों को आधार बनाकर लिखा है वे पात्र विद्रोह नहीं करते। हम जानते हैं कि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज जैसा होगा साहित्य उसे उसी रूप में चित्रित करेगा। भारत का प्राचीन इतिहास वर्ण-व्यवस्था को मानकर चलने वाला इतिहास रहा है जहां दलित शोषित पीड़ित रहे हैं और दलित भी वर्ण व्यवस्था का पोषण करते रहे होंगे। अगर पहले दलित शिक्षित नहीं थे, जाग्रत नहीं थे, उनमें चेतना का प्रस्फुटन नहीं हुआ था, दलित विद्रोह करते नजर नहीं आते थे तो सवर्ण लेखक दलितों को विद्रोह करते कैसे दिखाते। सवर्ण लेखकों की सीमाओं को हमें समझना होगा, उनकी मानसिकता भी जातिवादी सीमाओं में बंधी होगी। अगर ऐसा नहीं होता, अगर वे दलितों को विषय बनाकर लिखते, तो आज दलित शोषित-पीड़ित, उपेक्षित नहीं होते, ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ जो विद्रोह आज दिखाई पड़ता है, अगर उस समय होता तो आज दलित विमर्श, दलित आंदोलन, दलित अवधारणा पर चर्चा की आवश्यकता नहीं होती।

संदर्भ

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- शरणकुमार लिंबाले 2005, पृ0 42
2. कंवल भारती युद्धरत आम आदमी (अंक 41 42) 1998, पृ0 41
3. डॉ० सी० बी० भारती दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, हंस- 11, अंक 1, 1996 पृष्ठ 70-72
4. डॉ० सी० बी० भारती दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, हंस- 11, अंक 1. 1996 पृष्ठ 70-72
5. बाबूराव बागूल दलित साहित्य हे तर माणसायचे साहित्य, सिंह गर्जना, दिवाली अंक 1975
6. 'सूड' उपन्यास मराठी पस्तावना- डॉ० वानखेडे (हंस- अक्टूबर 1992, पृ0 23)
7. 159 दलितों में रूपान्तरण की प्रक्रिया- नरेन्द्र सिंह, पृ० सं० 6
8. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुम चतुर्वेदी द्वारिका प्र० शर्मा, पृ० सं0 524
9. संस्कृत हिन्दी इंगलिश कोश सं० सूर्यकान्त, पृ० 265
10. दलितों में रूपान्तरण की प्रक्रिया नरेन्द्र सिंह, पृ0 6-7
11. दलित साहित्य चिन्तन के विविध आयाम- सं० डॉ० एन. सिंह, पृ० 18
12. हिन्दी यवाची शब्दकोश: भोलानाथ तिवारी, पृ0 265

13. दलितायन - आवंतिका प्रसाद मरमट, पृ० 2
14. मानक हिन्दी कोश खण्ड-3, सं० रामचन्द्र वर्मा, पृ० 35
15. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश वामन शिवराम आप्टे, पृ0 45
16. उच्चतर हिन्दी कोश- डॉ० हरदेव बाहरी पृ० 136
17. वृहद अंग्रेजी - हिन्दी कोश- प्रथम भाग, डॉ० हरदेव बाहरी, पृ0 504
18. मानक अंग्रजी-हिन्दी कोश- सत्यप्रकाश, पृ० 362
19. शिखर की ओर सं० डॉ० एन० सिंह, पृ० 331
20. मोहनदास नैमिशराय साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल, नया पथ, अंक 24-25 जुलाई-सितम्बर, 1997, पृष्ठ 104-5
21. रमणिका गुप्ता - सम्पादकीय, खरी-खरी बात, युद्धरत आम आदमी अंक 41-42, 1998 पृ0 VIII
22. डॉ0 गंगाधर पानतावणे- अम्बेडकरवादः दलित साहित्य की प्रेरणा शिखर की ओर (सं० डॉ० एन० सिंह), 1997, पृ० 300
23. डॉ० एन० सिंह- हिन्दी दलित कविता पश्चन्ति अंक अप्रैल-जून, 1998 पृ0 43
24. रजतरानी मीनू नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, प्रकाशक दलित साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली
25. अर्जुन डाँगले दलित साहित्य: एक अभ्यास, 1978 महाराष्ट्र राज्य साहित्य संसकृति मंडल, पृष्ठ दो
26. वही, पृष्ठ 31
27. चौधरी, उमाशंकर, दल साहित्य: गैर दलितों का हस्तक्षेप कितना जरूरी? हाशिए की वैचारिकी, उमाशंकर चौधरी (संपादक) अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2008 पृष्ठ 296.
28. तिवारी, बजरंग बिहारी, दलित साहित्य एक अंतर्यात्रा, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण: 2015 पृष्ठ 15
29. बड़त्या, सूरज, सत्ता संस्कृति और सौंदर्यशास्त्र, भारतीय दलित अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2010 पृष्ठ 65
30. सिंह, रामधारी, 'दिनकर', संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, नईदिल्ली पटना, नवीन संस्करण: 2008 पृष्ठ 102
31. कुमार, निरंजन, दलित साहित्य का समाजशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2010 पृष्ठ 37
32. डॉ तुलसीराम, चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, आकाश प्रकाशन, पृष्ठ 60
33. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण: 1998 पृष्ठ 43
34. आचार्य शुक्ल, रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संशोधित एवं परिवर्तित बत्तीसवां संस्करण पृष्ठ 6
35. उद्धृत कुमार निरंजन, मनुष्यता के आईने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 10 वही, पृष्ठ- 38
36. फुले, जोतिबा, महात्मा जोतिबा फुले रचनावाली 1, एल. जी. मेश्राम विमलकीर्ति' (अनुवाद एवं संपादन) राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली पृष्ठ 135
37. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरी आवृत्ति: 2010 पृष्ठ 357-358
38. वही, पृष्ठ- 357
39. वही, पृष्ठ- 359
40. कविता के सौ बरस, लीलाधर मंडलोई (संपादक), शिल्पायन, शाहदरा, दिल्ली, संस्करण: 2013 पृष्ठ 44-45
41. उद्धृत वही, पृष्ठ- 43
42. उद्धृत, कुमार निरंजन, मनुष्यता के आईने में दलित साहित्य का समाजशास्त्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 2010 पृष्ठ 16
43. वही,पृष्ठ- 40